ओ३म्

महर्षि दयानन्द कृत

ऋग्वेद का नमूना-भाष्य

प्रकाशक

वैदिक पुस्तकालय

दयानन्दाश्रम, केसरगंज, अजमेर

प्रथम संस्करण १९८८

मूल्य

॥ ओ३म् ॥

आर्य्यसमाज के नियम

१. सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सब का आदि मूल परमेश्वर है।

२. ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है।

३. वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्य्यों का परम धर्म है।

४. सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

५. सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिए।

६. संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७. सब से प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्त्तना चाहिए।

८. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।

९. प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये, किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।

१०. सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें॥

पुस्तक के विषय में

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने वेदभाष्य करने का निश्चय करने के उपरान्त वेदभाष्य का नमूना लिखकर प्रकाशित किया था। नमूने के पीछे उनका उद्देश्य वेदभाष्य-सम्बन्धी प्रचलित भ्रान्तधारणाओं का खण्डन तथा वैदिकभाष्य-प्रक्रिया का प्रतिपादित करना था। चूंकि उस समय तक प्राप्त अन्य वेदभाष्य स्वामीजी तथा वैदिक संस्कृति के प्रतिकूल पड़ते थे और एक कठिनाई यह भी थी कि वे वेदभाष्य तत्कालीन कथित भारतीय मनीषियों में ऋचाओं की भाँति ही प्रामाणिक माने जाने लगे थे, अतः इस भ्रान्ति के निवारणार्थ स्वामीजी ने विस्तारपूर्वक मन्त्रों का विवेचन तथा प्रमाण एवं तर्क सहित उनके अर्थ व भाष्य किये व प्रकाशित कराये। नमूने में दिए गए भाष्य से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि स्वामीजी वेदमन्त्रों की अनेकार्थतापूर्ण सिद्धान्त को स्वीकार करते थे, परन्तु समय तथा लेखन-कार्य की अन्य बाधाओं के कारण उन्होंने मन्त्रों के एकार्थपरक भाष्य ही लिखाए तथा प्रकाशित कराये।

नमूने के भाष्य से उनका यह सिद्धान्त तो पुष्ट होता ही है कि प्रत्येक वेदमन्त्र में अनेक विद्याओं का समावेश है तथा साथ ही यह भी कि वेदमन्त्रों में उपदिष्ट विद्याओं की इयत्ता नहीं हो सकती तथा अनेकार्थता के कारण पुनरुक्त दोष का भी परिहार हो जाता है। इसी से यह शास्त्रवाक्य सार्थक हो सकता है—"अनन्ता वै वेदाः।"

नमूने का जो भाष्य प्रकाशित हुआ है वह संक्षिप्त भाष्य प्रारम्भ के २२ मन्त्रों का पृथक् मिलता है। विस्तृत भाष्य भी स्वामीजी महाराज ने किया था उसका भी प्रकाशन हुआ उसी सन्दर्भ में द्वितीय सूक्त के प्रथम मंत्र का यह भाष्य है। इसके न छपने का कारण यही था जब विधिवत् वेदभाष्य का प्रकाशन प्रारम्भ हो गया तब इसकी आवश्यकता नहीं रही। जो प्रेस में जा चुका था उसके आगे का भाष्य संग्रह में रखा था। छपे भाष्य की प्रति पं० युधिष्ठिरजी मीमांसक की कृपा से प्राप्त हुई जिसके कारण यह मन्त्रभाष्य पूर्ण हो सका।

ऋग्वेदभाष्य में इस मन्त्र का व्याख्यान होने पर भी जिस विस्तार से ऋषि ने इन पंक्तियों में विचार किया है उससे स्वाध्यायप्रेमियों को कुछ मनस्तोष प्राप्त हो सकेगा, इसी भावना से ये पृष्ठ पाठकों को अर्पित हैं।

शिवरात्री
सं० २०४४ वि०

—धर्मवीर

महर्षि दयानन्द कृत ऋग्वेद का नमूना-भाष्य

'वायवा याहि' इत्यस्य नवर्चस्य सूक्तस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । तत्र प्रथमद्वितीयतृतीयमन्त्राणां वायुर्देवता, चतुर्थपञ्चमषष्ठ-मन्त्राणाम् इन्द्रवायू देवते, सप्तमाष्टमनवममन्त्राणां मित्रावरुणौ च देवते । सर्वस्य सूक्तस्य गायत्रीच्छन्दः । षड्जः स्वरश्च ।।

अथ प्रथमो मन्त्रः

मू०—वायवा याहि दर्शतेमे सोमा अरंकृताः ।
तेषां पाहि श्रुधी हवम् ॥ १ ॥

प०—वायो इति । आ । याहि । दर्शत । इमे । सोमाः । अरम्ऽकृताः ॥
तेषाम् । पाहि । श्रुधि । हवम् ॥ १ ॥

भाष्यम्—(वायो) हे वायो अनन्तबल सर्वप्राण अन्तर्यामिन् ! (दर्शत) द्रष्टुं योग्य प्रेक्षणीयेश्वर ! कृपया अस्मद्धृद्देशं (आयाहि) आगच्छ, नित्यं प्रकाशको भव । (इमे सोमाः) सर्वे पदार्थाः भवतैव (अरंकृताः) अलंकृताः भूषिताः सन्ति । (तेषां पाहि) तान् त्वमेव रक्ष । तथा (हवम्) स्तोत्रभागं त्वं (श्रुधी) श्रुधि शृणु, अस्मत्कृतां स्तुतिं सद्यो निशामय ।

वायुः परमेश्वरस्य नामास्ति । प्रथममन्त्रभाष्योक्तान्यपि प्रमाणान्यत्र वेद्यानि । अन्यच्च—'नमो ब्रह्मणे नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि' इत्यादीन्यपि च तैत्तिरीयोपनिषदि अ० १ । वल्ली १ । अनु० १ ।। इत्येकोऽर्थः ।।

अथ द्वितीयोऽर्थः—(वायो) अयं भौतिको वायुः (दर्शत) दर्शतः द्रष्टव्यः, पदार्थविद्यार्थं प्रेक्षणीयोऽस्ति । येन वायुना (इमे सोमाः) सोमवल्ल्याद्या ओषधयः तद्रसाश्च (अरंकृताः) तेनैवात्युत्तमा भवन्तीति जानीमः । कुतः ? (तेषां पाहि) तेषां पाता रक्षकः स एवास्ति । यज्ञे सुगन्ध्यादिहोमेन शुद्धः सन् स एव पाति रक्षत्यतः । तथा (हवम्) देयं ग्राह्ययोग्यं विद्यान्वितं शब्दम् (श्रुधी) श्रुधि येन सर्वे जीवाः शृण्वन्ति स च श्रावयति विद्योपदेशार्थं यदाख्यानं भवति । तत्राचेतने चेतनवद्व्यवहारे न दोषो भवति ।।

भौतिको वायुर्द्वितीयेऽर्थे गृह्यते । कुतः ? वायुशब्दग्रहण एतत् प्रयोजनं विद्याद्वयं यथा गृहीतं स्यात्, अन्यथा प्रभो वा स्पर्शवन् इत्येवं [वा] ब्रूयात् । यथा प्रथमसूक्ते व्यावहारिकपारमार्थिकविद्याद्वयमग्निशब्दग्रहणेनैवेश्वरः प्रकाशितवान्, तथास्मिन् द्वितीये

सूक्तेऽपि बोध्यम्। व्यवहारविद्यायामग्नेर्मुख्यकारणत्वात् प्रथमं ग्रहणं कृतम्, ततः तदनुसंगित्वाद्[1] वायोर्द्वितीयसूक्ते ग्रहणं च। वायुरेवाग्नेर्वर्धकोऽस्तीत्यतो याग्निविद्या प्रथमे द्वितीये च वर्ग उक्ता, तस्या अपि वायुः कारणम्। वायुसहायेन विनाग्निरप्यकिंचित्करो भवति। स्थावरजङ्गमस्य द्विविधस्य जगतो वायुर्वृद्धिरक्षाकरोऽस्ति, अतएव रक्षकः। तथा श्रवणकथनादिचेष्टामयस्य व्यवहारस्य वायुरेव मुख्यं कारणमस्ति। तस्माद्वायुगुणोपदेश ईश्वरेण कृतोऽस्ति ॥ १ ॥

अत्रोभयार्थे प्रमाणानि—व्यत्ययो बहुलम्। अष्टाध्याय्याम्। अ० ३ पा० १।[2] अस्य सूत्रस्योपरि भाष्ये कारिकास्ति—

सुप्तिङुपग्रहलिङ्गनराणां कालहलच्स्वरकर्तृयङां च।
व्यत्ययमिच्छति शास्त्रकृदेषां सोऽपि च सिध्यति बाहुलकेन ॥ १ ॥ इति

'प्रातिपदिकनिर्देशाश्चार्थतन्त्रा भवति। न कांचित्प्राधान्येन विभक्तिमाश्रयन्ति। यां यां विभक्तिमाश्रयितुं बद्धिरुपजायते, सा सा आश्रयितव्या। 'स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ'। अ० १। पा० १। सू० ५५ इत्यस्य सूत्रस्योपरि भाष्यवचनम् ॥

'अर्थगत्यर्थश्शब्दप्रयोगः'। 'न वेति विभाषा'[3] इत्यस्य सूत्रस्योपरि भाष्यसूत्रम्। 'अर्थवशाद्विभक्तेर्विपरिणामः'[4] इति भाष्योक्ता परिभाषेयम्। अथैषां संक्षेपतोऽर्थः। वैदिकशब्दनिर्देशे बहुधा व्यत्ययो भवति। स च सुबादितिङन्तेष्वेकादशसु विधीयते। अनेनात्र पुरुषव्यत्ययः कर्त्तव्यः। अतोऽत्रमध्यमपुरुषष्यस्थाने प्रथमपुरुषः क्रियते। प्रातिपदिक निर्देशवत् प्रातिपदिक निर्देशाश्चेत्युक्तत्वात्। अनेनेदं विज्ञायते विभक्ति निर्देशः प्रधानो [न] भवतीति। कुतः। शब्दस्यार्थगत्यर्थायैवप्रयोगात्। अत एवार्थस्य ज्ञानाय ज्ञापनाय च विभक्तेर्विपरिणामोऽन्यथात्वं कर्त्तुं योग्यमस्ति ॥

भाषार्थ—(वायो) हे वायु अर्थात् ईश्वर अनंतबल सब प्राणियों के प्राण अन्तर्यामी (दर्शत) देखने के योग्य आप हमारे आत्मा में प्राप्त होकर (आयाहि) प्रति दिन प्रकाश करने वाले हो (इमे सोमाः) संसार के सब पदार्थ आप ही ने उत्पन्न करके (अरंकृताः) शोभित किये हैं (तेषां पाहि) उनकी रक्षा आप ही कीजिये और (हवम्) (श्रुधि) हमारी स्तुति को शीघ्र सुनिये।

(वायुः) यह परमेश्वर का नाम है। इस विषय में पहले मंत्र के भाष्य में कहे हुए तथा (नमो ब्रह्मणे०) इसको लेकर तैत्तिरीयोपनिषद् के जो प्रमाण हैं वे भी सब जानने योग्य हैं। यह तो प्रथम अर्थ हुआ।

अब दूसरा कहते हैं—(वायो) यह जो भौतिक वायु (दर्शतः) पदार्थ विद्या के लिये देखने के योग्य है, जिसके गुणों से (इमे सोमाः) सोमवल्ली आदि ओषधि और उनके रस (अरंकृताः)

[१. षत्वं विनाऽयं प्रयोग ऋग्वेदादिभाष्यभूमिकायामपि प्रयुज्यते।
२. अष्टा० ३।१।८५॥
३. अष्टा० १।१।४३॥
४. महाभाष्य अ० १।३।९॥ सं.]

अत्यन्त उत्तम हो जाते हैं क्योंकि (तेषां पाहि) यज्ञ में सुगंधित द्रव्यों के होम से शुद्ध होकर वही उनकी रक्षा करता है तथा जिसके द्वारा (हवम्) कहने-सुनने के योग्य विद्यायोग्य विद्या युक्त शब्दों को सब जीव (श्रुधि) सुनते-सुनाते हैं। इस स्थान में इस बात की याद रखनी अवश्य है कि जहां कहीं पदार्थ विद्या के उपदेश के लिये जड़ में जो चेतनभाव की कल्पना करली जाती है तो वहां उस बात में दोष नहीं आ सकता। इस दूसरे अर्थ में भौतिक वायु का ग्रहण इसलिये किया है कि जिससे व्यवहार और परमार्थ की दोनों विद्या वायु शब्द से जानी जायं नहीं तो 'प्रभु' वा 'स्पर्शवान्' ऐसा ही मंत्र में कहते। जैसे पहले सूक्त में ईश्वर ने अग्नि शब्द से व्यवहार और परमार्थ की दोनों विद्याओं का प्रकाश किया है वैसे ही इस दूसरे सूक्त में भी जान लेना चाहिये। व्यवहारविद्या में अग्नि मुख्य कारण होने से पहले सूक्त में अग्नि और उसका उपयोगी होने से दूसरे सूक्त में वायु शब्द का ग्रहण किया है। अग्नि का बढ़ानेवाला वायु ही है इसलिये पहले और दूसरे वर्ग में जो अग्निविद्या कही है उसका भी कारण वायु ही है कि जिसके सहाय विना अग्नि कुछ भी काम नहीं कर सकता तथा जड़ और चेतन दो प्रकार का जो जगत् है उसकी वृद्धि और रक्षा वायु से ही होती है अथवा श्रवण, कथन आदि क्रियायुक्त व्यवहारों का भी मुख्य कारण वायु है, इसलिये ईश्वर ने अग्नि और वायु के गुणों का उपदेश इस स्थान में किया है ॥१॥

उक्त अर्थों में जो जो प्रमाण हैं उनके अर्थ संक्षेप से लिखते हैं। वैदिक शब्दों में जो प्रायः व्यत्यय अर्थात् विपरीतता होती है सो 'सुप्' 'तिङ्' 'आत्मनेपद' और 'परस्मैपद' 'पुल्लिग' 'स्त्रीलिंग' 'नपुंसकलिंग'। प्रथम मध्यम उत्तम पुरुष। भूत भविष्यत् वर्त्तमानकाल। (हल्)। (अच्)। उदात्त आदि स्वर। 'कर्त्ता' और 'यङ्' आदि ११ ग्यारह विषयों में व्यत्यय होता है। इसी से यहां भी मध्यम पुरुष के स्थान में प्रथम पुरुष हुआ है। शब्दों के प्रयोग अपने अपने अर्थों के आधीन होते हैं अर्थात् अर्थों के जनाने के लिये ही शब्दों का प्रयोग किया जाता है और उनमें विभक्ति अप्रधान समझी जाती है इसी से उनके अर्थ जानने वा जनाने के लिये विभक्ति बदल भी ली जाती है॥

भाष्यम्—अत्र, जैमिन्याचार्य्येणाप्युक्तम्। परन्तु श्रुतिसामान्यमात्रम्॥ १॥ पू० मी० अ० १। पा० १। सू० ३१॥ सतः परमविज्ञानम्॥ २॥ पूर्वमी० अ० १। पा० २। सू० ४६॥ वैदिक शब्दानां सामान्येऽर्थ एव शक्तिरस्ति सामान्यं च विशेषं प्रति वर्त्तत एव। यथाऽत्रवायुशब्दस्य ग्रहणं सामान्ये धात्वर्थ एव क्रियते। कुतः। नित्यैरर्थैः सह वैदिकशब्दानां संबन्धात्। नैवात्र विशेषमात्रेऽर्थो विवक्ष्यते॥ १॥ यत्र प्रसिद्धोऽप्यर्थो निघण्टुनिरुक्तव्याकरणादिशास्त्रेण प्रमादालस्याद्वैदिकशब्दार्थो न विज्ञायते तत्र धात्वर्थाच्छब्दस्यार्थः कल्पयितव्यः। इत्यनेन 'वा' गतिगन्धनयोरितिधात्वर्थतो वायुशब्दार्थस्य ग्रहणे न दोषो भवति॥ एतन्मंत्रार्थं यास्कमुनिरप्येवं व्याख्यातवान्।

अथातो मध्यस्थानादेवतास्तासां वायुः प्रथमागामी भवति वायुर्वातेर्वेत्तेर्वास्याद्गतिकर्मण एतेरिति स्थौलाष्ठीविरनर्थको वकारस्तस्यैषा भवति। निरु० अ० १०। खं० १॥

अन्तरिक्षमध्ये ये पदार्थाः सन्ति तेषां मध्ये वायुः प्रथमागाम्यस्ति। वाति सोयं वायुः सर्वगतत्वात्सर्वज्ञत्वाद्वायुरीश्वरः। गतिमत्वाद्भौतिकोपि गृह्यते। वेत्ति सर्वं जगत्स वायुः परमेश्वरोस्ति तस्य सर्वज्ञत्वात्। मनुष्यो येन वायुना तन्नियमेन

प्राणायामेन च परमेश्वरं शिल्पविद्यामयं यज्ञं च वेत्ति जानातीत्यर्थेन भौतिको वायुर्गृह्यते। एवमेवैति प्राप्नोति प्राप्तोस्ति वा चराचरं जगदित्यर्थेन परमेश्वरस्यैव ग्रहणम्। एति प्राप्नोति सर्वेषां लोकानां परिधीननेनार्थेन भौतिकस्यापि। कुतः। अन्तर्यामिरूपेणेश्वरस्य मध्यस्थत्वात्प्राणवायुरूपेण भौतिकस्यापि मध्यस्थत्वादेतद्द्वयस्यार्थस्यैषा वाचिका ऋग्वायवाहीति प्रवृत्तास्तीति विज्ञेयम्। वायवायाहि दर्शतेमे सोमा अरंकृताः। तेषां पाहि श्रुधी हवम्॥ १॥

वायवायाहि दर्शनो येमे सोमा अरंकृता अलंकृतास्तेषां पिब शृणु नो ह्वानमिति। कमन्यं मध्यमादेवमवक्ष्यत्तस्यैषापरा भवति। निरु० अ० १०। खं० २॥ मध्यमानां स एवेश्वर आदेवस्तं वायवायाहीत्यृगवक्ष्यत्। (कः) सुखस्वरूपः (अन्यः) भिन्नः सर्वेषामात्मानमप्यन्तर्यामिरूपेण यः स्थितोस्ति। (आदेवः) आसमन्ताप्रकाशस्वरूपः। भौतिकस्य जडस्य वायोः सकाशादन्यं भिन्नं चेतनं परमात्मानं वेदोऽवक्ष्यदित्युक्तत्वात्। मध्यमानां देवतानां सूर्य्यादि लोकानामपि य आदेव आसमन्तात्प्रकाशकः स मध्यमादेवः परमेश्वरोस्ति। अयमेव क संज्ञोस्ति तस्य सुखस्वरूपत्वात्। अस्मात्परमेश्वराद्भौतिकवाय्वादयोऽन्येभिन्नाः सन्तीति विज्ञेयम्।

न तत्र सूर्य्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोयमग्निः। तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥ १॥ मुण्डक० मुं०२। खं० २। मं० १०॥

इदमप्यत्र परमेश्वरार्थग्रहणे प्रसंगादुक्तमस्तीति विज्ञेयम्। एतद्द्वयार्थवाचिकैषापरा ऋग्भवति॥

भाषार्थ—इस विषय में जैमिनि आचार्य्य ने भी कहा है कि वेद के शब्द सामान्य अर्थ में वर्त्तमान हैं और जो सामान्य है वह विशेष में भी रहता है, जैसे यहां वायु शब्द का सामान्य धात्वर्थ में ग्रहण किया गया है क्योंकि सामान्य अर्थों के साथ वैदिक शब्दों का संबंध है इसी से यहां विशेष अर्थ नहीं लिया। जहां कहीं निघण्टु, निरुक्त और व्याकरण आदि शास्त्रों से वैदिक शब्दों का अर्थ प्रसिद्ध हो तो वहां उसको धात्वर्थ से भी विचार लेना चाहिए, इसलिए 'वा' धातु के अर्थ से वायु शब्द के ग्रहण करने में दोष नहीं आ सकता।

इस मंत्र का अर्थ यास्कमुनिजी ने ऐसा किया है कि जितने अन्तरिक्ष में पदार्थ हैं उनमें वायु प्रथम है। वह सर्वगत और सर्वज्ञ होने से ईश्वर तथा सर्वथा बलवान् और बल का निमित्त होने से भौतिक कहाता है, क्योंकि चराचर जगत् का जानने और उसको प्राप्त होनेवाला परमेश्वर और सब लोकों का परिधान अर्थात् आच्छादन करने वाला भौतिक वायु है। इसी भौतिक वायु और इसके नियम से मनुष्य परमेश्वर तथा शिल्पविद्यामय यज्ञ को जानता है तथा जो चराचर जगत् को प्राप्त हो रहा है इससे ईश्वर; और सब लोक-लोकान्तर की परिधियों को प्राप्त हो रहा है इससे भौतिक का ग्रहण होता है। अन्तर्यामी रूप होके ईश्वर व्याप्त और भौतिक वायु प्राणरूप होकर सबका धारण करते हैं इन्हीं दोनों अर्थों का कहनेवाला (वायवायाहि) यह मंत्र है। अंतर्यामिरूप से सबके आत्माओं का प्रकाश करनेवाला परमेश्वर (आ देव) अर्थात् सब देवों का देव कहाता है, भौतिक वायु से दूसरा चेतन वायु परमेश्वर कहाता है। इसी से सूर्य्यादि लोकों का प्रकाश करनेवाला मध्य देव परमेश्वर ही है, वही

सूखरूप होने से क संज्ञक है। वह परमेश्वर भौतिक वायु और अग्नि आदि पदार्थों से भिन्न है।

(न तत्र०) यह भी एक प्रमाण यहां वायु शब्द से परमेश्वर के ग्रहण में कहा है तथा उक्त दोनों अर्थों का कहनेवाला और भी मंत्र है। जैसे—

भाष्यम्—आसस्राणासः शवसानमच्छेन्द्रं सुचक्रे रथ्यासो अश्वाः। अभि श्रव ऋज्यन्तोवहेयुर्नू चिन्नु वायोरमृतं विदस्येत् ॥ १ ॥ आससृवांसोभिबलायमानमिन्द्रं कल्याणचक्रे रथे योगाय रथ्या अश्वा रथस्य वोढार ऋज्यन्त ऋतुगामिनोऽनमभिर्वहेयुर्नवं च पुराणं च। श्रव इत्यन्ननाम श्रूयत इति सतो वायोश्चास्य भक्षो यथा न विदस्येदितीन्द्र-प्रधानेत्येके नैघण्टुकं वायुकर्मोभयप्रधानेत्यपरम् ॥ निरु० अ० १०। खं० ३ ॥

आसस्राणास इत्यस्य मन्त्रस्योपरि निरुक्तव्याख्या आससृवांस इत्यादिरस्ति। अभिबलायमानं महाबलमिन्द्रं परमैश्वर्य्यरूपं परमेश्वरमाससृवांसो योगिनस्तमेवास-मन्तात्सृताः प्राप्ता भवन्तीत्यनेनेश्वरो गृह्यते। तथैवाभिबलायमानमिन्द्रं बलस्वरूपं सर्वलोकैश्वर्य्यसंयुक्तं भौतिकं वायुमपि च योगिन आससृवांसः सृता आसमन्तात्प्राप्ता भवन्ति। कस्मै प्रयोजनाय (कल्याणचक्रे रथे योगाय०) कल्याणमेव चक्रं चरणं यस्य तस्मिन् रथे ब्रह्माण्डे शरीरे परमेश्वरस्य योगाय प्राप्तये चानेनार्थेन भौतिकस्य वायो-र्ग्रहणम्। परमेश्वरस्य साधारणशक्त्यादयोऽश्वा भौतिकस्य वेगाग्न्यादयश्च ते रथ्या अश्वाः सन्ति। रथं ब्रह्माण्डाख्यं शरीरं च वहन्ति प्रापयन्ति तस्माद्रथ्याः।

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ॥ इति कठ० अ० १। वल्ली ३। मं० ३ ॥

इति प्रामाण्येनेश्वरशक्तय इत्यनेनेश्वरस्य ग्रहणम्। तथैव विमानादियानसमूहं वहन्ति ते भौतिकस्य वायो रथ्या अश्वा विज्ञेया इत्यनेन भौतिकस्य च पूर्वोक्तस्य रथस्य वोढारो रथ्या अश्वास्तयोर्द्वयोर्वायुशब्दार्थयोरीश्वरभौतिकयोः पूर्वोक्तस्य रथस्य वोढार उक्ता अश्वाः सन्तीति योजनीयम्।

(वायोरमृतं विदस्येत्) इति मन्त्राक्षरादुभयार्थस्य ग्रहणं भवति। कुतः। वायोः परमेश्वरस्य सकाशादेवामृतं धर्मात्मानो विद्वांस आससृवांसो भवन्ती-त्युक्तत्वात्। तथैव भौतिकस्य वायोर्निमित्तीकरणाद्विमानादियानरचनेन प्राणायामेन वाऽमृतं सुखं प्राप्ता भवन्तीति च ॥

भाषार्थ—(आसस्राणासः) इसकी व्याख्या निरुक्तकार ने (असससृवांस०) इत्यादि की है और उसमें यही अभिप्राय खोला है अथवा यही बात सिद्ध की है कि (अभिबलायमानं०) अर्थात् महाबल परमैश्वर्य्ययुक्त परमेश्वर को योगीजन अच्छे प्रकार प्राप्त होते हैं। इस अर्थ से ईश्वर तथा योगी लोग (कल्याणचक्रे रथे योगाय) जिसका सुख ही पग है उस रथ रूप ब्रह्माण्ड वा शरीर में परमेश्वर की प्राप्ति के लिये अभ्यास करते हैं तथा (अभिबलायमानं०) बलस्वरूप सब लोकों के ऐश्वर्य्य से युक्त जो भौतिक वायु है उसको भी यथावत् जानते हैं। इस उत्तरार्ध अर्थ से भौतिक वायु का ग्रहण किया गया है। परमेश्वर के सामर्थ्य से स्थित होकर सब लोक वेगवाले तथा भौतिक वायु के वेग और अग्नि आदि अश्व हैं जिनसे सब सवारियों को सिद्ध करके रथरूप ब्रह्माण्ड वा शरीरों में मनुष्यों के कर्मानुसार यथायोग्य स्थानों में पहुंचते हैं। (आत्मानं०) इस प्रमाण से यहाँ शक्ति शब्द करके ईश्वर का ग्रहण किया है। जैसे परमेश्वर के अश्व ब्रह्माण्ड वा शरीररूप रथ को

जीवों के कर्मानुकूल उत्तम, मध्यम, नीच स्थानों में पहुंचा देते हैं वैसे ही भौतिक अग्नि के अश्व विमान आदि वाहनों को उनके चिंतित स्थानों में सुगमता से उड़ा ले जाते हैं। इस प्रकार (रथ्याः) इस शब्द से ईश्वर और भौतिक वायु इन दोनों का परस्पर सम्बन्ध अनुभयतादूष्य रूपकालंकार रीति से माना गया है। (आसन्नाणासः०) इस मन्त्र में जो (वायोरमृतं विदस्येत्) ये अक्षर हैं इनसे भी यहां परमेश्वर और भौतिक वायु इन दोनों ही का ग्रहण होता है क्योंकि धर्मात्मा विद्वान् लोग परमेश्वर ही से मोक्ष तथा भौतिक वायु के ही मुख्य योग से विमान आदि सवारियों को बनाके सुख को प्राप्त होते हैं॥

भाष्यम्—**प्र वावृजे सुप्रया बर्हिरेषामा विश्पतीव बीरिट इयाते। विशामक्तोरुषसः पूर्वहूतौ वायुः पूषा स्वस्तये नियुत्वान्॥ १॥ प्रवृज्यते सुप्रायणं बर्हिरेषामेयाते सर्वस्य पातारौ वा पालयितारौ वा। वीरिटमन्तरिक्षं भियो वा भासो वा ततिरपि वोपमार्थे स्यात् सर्वपती इव राजानौ बीरिटे गणे मनुष्याणां रात्र्या विवासे पूर्वस्यामभिहूतौ वायुश्च नियुत्वान् पूषा च स्वस्त्यनाय। नियुत्वान् नियुतोऽस्याश्वा नियुतो नियमनाद्वा नियोजनाद्वाच्छाभेराप्तुमिति शाकपूणिः॥ निरु० अ० ५। खं० २८॥**

(प्रवावृजे०) इत्यपि ऋगत्रार्थे प्रवर्त्तते। अस्या उपरि प्रवृज्यत इत्यादि निरुक्त व्याख्ययैतौ वायुशब्देन गृह्येते सर्वस्य पातारौ वा पालयितारौ वा इत्युक्तत्वात्। परमेश्वरस्य सर्वस्य जगतोभिरक्षकत्वात्। तथैव बाह्यं व्यावहारिकं रक्षणं सर्वस्य जगतो भौतिकस्य वायोः सकाशाद्भवत्यत एतयोर्द्वयोरर्थयोरवग्रहणं भवति। द्वावेतावाकाशस्थावेव वर्त्तेते। तौ रात्र्याविवासे प्रातरेवाभिहूतौ स्तुतिप्रार्थनोपासनेन परमेश्वरः प्राणायामेन भौतिकश्च तौ द्वौ नियुत्वान् पूषा च भवतः॥ नियुत्वानोश्वरः।

नियुत्वानितीश्वरनामसु पठितम्। निघं० अ० २। खं० २२॥ उक्तत्वात्। पूषा पुष्टिकारकत्वाद्भौतिको वायुरेवात्र गृह्यते। एवं सम्यक् सेवितौ द्वौ स्वस्त्ययनाय सुखाय भवतः। नियुत्वान्नियुतोऽस्याश्वा नियुतो नियमनाद्वा इत्युक्तत्वात्। परमेश्वरस्य ग्रहणं तस्य सर्वनियन्तृत्वात्। नियोजनाद्वा इति वचनात्प्राणायामे विमानादौ शिल्पव्यवहारे वा भौतिकस्यास्य वायोर्वेगादीनामश्वानां यथावन्नियोजनात् कृतनियोगात्सर्वा व्यवहारविद्याः सिद्धा भवन्तीत्येतद्द्वयार्थग्रहणमत्र विज्ञायते। (सर्वपती इव०) इमौ द्वौ सर्वपतीराजानाविव बीरिटे अन्तरिक्षे मनुष्याणां गणे समूहे च वर्त्तेते। अनेनाप्यत्रोभयार्थग्रहणं भवतीति॥

भावार्थ—(प्र वावृजे०) यह मंत्र भी वायु शब्द से परमेश्वर वा भौतिक वायु के ग्रहण करने में पुष्ट प्रमाण है। निरुक्तकार ने प्रवृज्यते इत्यादि मंत्र की जहाँ व्याख्या की है वहाँ (सर्वस्य पातारौ०) इस कथन से ईश्वर और भौतिक वायु इन दोनों का ग्रहण किया है, क्योंकि जैसे परमेश्वर सब जगत् की निरन्तर रक्षा करता है वैसे ही भौतिक वायु से इस जगत् की व्यवहार-सम्बन्धी रक्षा होती है। ईश्वर व्यापकता से और भौतिक वायु अभिनिवेश हेतु से आकाश में रहते हैं, इसीलिये रात्रि के अनन्तर प्रातःकाल के समय स्तुति, प्रार्थना और उपासना करके परमेश्वर तथा प्राणायाम करने में केवल वायु का ग्रहण होता है। और ईश्वर को 'नियुत्वान्' भी कहते हैं, क्योंकि सब वह प्राणियों को यथायोग्य सुख वा दुःख पहुँचानेवाला है। फिर निघण्टु में **राष्ट्री, अर्य्यः,**

निर्युत्वान् और **इन** ये चार नाम ईश्वर के कहे हैं तथा सब पदार्थों की पुष्टि करने के हेतु से भौतिक वायु पूषा नाम से भी बोला जाता है। इन दोनों वस्तुओं की जैसी जैसी सेवा की जाती है वैसा वैसा ही उनसे सुख प्राप्त होता है। (सर्वपती इव) परमेश्वर वा भौतिक वायु सब राजाओं के समान अन्तरिक्ष और मनुष्यों के समूह में वर्त्तमान हैं, इस व्याख्यान से भी उक्त अर्थों का ग्रहण होता है। तथा निरुक्तकार के—

भाष्यम्—वायुः सोमस्य रक्षिता वायुमस्य रक्षितारमाह साहचर्य्याद्रसहरणाद्वा। निरु० अ० ११। खं० ५॥

वायुः सोमस्य सुतस्योत्पन्नस्यास्य जगतोरक्षत्वादीश्वरोत्र गृह्यते। कस्मात्सर्वेण जगता सह साहचर्य्याद्व्याप्तत्वाच्च। सोमस्य सोमवल्ल्यादेरोषधिगणस्य रसग्रहणात्। तथा समुद्रादेर्जलग्रहणाच्च भौतिको वायुरप्यत्र गृह्यते॥

भाषार्थ—(वायुः सोमस्य०) इस व्याख्यान से भी वही बात सिद्ध होती है क्योंकि सोम अर्थात् उत्पन्न किये हुए जगत् में व्याप्त होकर उसकी रक्षा परमेश्वर ही करता है और सोमवल्ली आदि ओषधियों का रस तथा समुद्र के जल का ग्रहण अर्थात् ऊपर चढ़ानेवाला केवल भौतिक वायु ही है॥

भाष्यम्—अत्रैतरेयब्राह्मणग्रन्थस्यापि प्रमाणानि सन्ति। तद्यथा—

वायुर्हि प्राणः। ऐ० पं० २। कं० २६॥

तस्मात्प्राणा द्वन्द्वं येनैवाध्वर्युर्यजुषा प्रयच्छति तेन होता प्रतिगृह्णाति। प्राणा वा ऋषयो दैव्यासः। एष वसुर्विदद्वसुरिह वसुर्विदद्वसुर्मयि वसुर्विदद्वसुश्चक्षुष्पाश्चक्षुम पाहीति। ऐतरे० पं० २। कंडि० २७॥

(वायुर्हि०) अनेन प्रथमतो भौतिको वायुर्गृह्यते। येन यजुषा यजुः संबन्धिन्या यज्ञक्रिययाऽध्वर्युः प्राणादेव द्वन्द्वं प्रयच्छति। तेनैव प्राणेन होता हवनकर्त्ता हव्यं प्रतिगृह्णाति। कुतः। सर्वस्याश्चेष्टायाः प्राण एव कारणं चातः। अतः प्राणा एव ऋषयो गमनहेतवो दैव्यासो दिव्यगुणयुक्ताः सन्तीति वेद्यम्। अनेन भौतिकस्य वायोर्ग्रहणम् भवति।

एष वसुरित्यादिना च द्वयोः। तद्यथा—एष वसुरस्ति प्रकृत्याकाशादीनां वासहेतुत्वात्परमेश्वरः। अग्न्यादीनां वासहेतुत्वाच्च भौतिको वायुरनेनार्थेन गृह्यते। तथा (विदद्वसु०) इहास्मिन्संसारे विदतां विदुषां वसुर्वास हेतुरनेन परमेश्वरस्य ग्रहणमेवं भौतिकस्यापि। एवमेव (मयिवसुर्विदद्व०) हे चक्षूरक्षक परमेश्वर भवान् मयि वसति। एवं मयि विदद्वसुश्च। तथा यदेतन्मे चक्षुरस्ति तत्त्वं सदा पाहि रक्षेत्यर्थात्परमेश्वरस्य ग्रहणम्। तथैव मयि वसुर्विदद्वसुर्यो वायुरस्ति सोपि भवत्कृपया पूर्वोक्तं चक्षुर्मे मम पात्वित्यर्थाद्भौतिकस्य वायोश्च। एवमेवैष वसुः संयद्वसुरिहेत्यादिवचनेनार्थद्वयं योजनीयम्॥

भाषार्थ—इस विषय में ऐतरेय ब्राह्मण के प्रमाण जो कि संस्कृत भाष्य में लिख दिये हैं उनमें से (वायुर्हि०) इस प्रमाण का अर्थ फिर भी दिखलाते हैं। जैसे (अध्वर्युः) यज्ञ का मुख्य कराने-

वाला यजुर्वेद के मंत्रों से संबन्ध रखनेवाली क्रिया करके प्राण से ही आज्ञा देता वा ऋत्विज् आदि के कहे हुए को श्रवण करता है उसी प्राण से होता अर्थात् होम करनेवाला होम करता होता है, क्योंकि शरीर से जो काम किये जाते हैं, उन सबों का कारण प्राण हैं, इसी से वे (गमनहेतवः) अर्थात् हरएक कामों में पहुंचनेवाले तथा उत्तम गुणों से युक्त समझे जाते हैं और क्योंकि वे प्राण भौतिक वायु ही हैं, इसलिये उक्त व्याख्यान से भौतिक वायु का ही ग्रहण होता है तथा—(एषः वसु०) इस प्रमाण से ईश्वर और भौतिक वायु इन दोनों का ग्रहण होता है, क्योंकि प्रकृति और आकाश आदि पदार्थों का परमेश्वर तथा अग्नि आदि पदार्थों का भौतिक वायु निवास का हेतु है तथा (विदद्वसु०) इससे भी उक्त अर्थों का ग्रहण होता है, क्योंकि इस संसार में विद्वानों का निवास हेतु अर्थात् उनके चित्त ठहरने का स्थान परमेश्वर और संसार के पदार्थों के ठहरने का स्थान भौतिक वायु है (मयिवसुर्विदद्वसु०) हे परमेश्वर ! आप मुझमें तथा अन्य पदार्थों में व्याप्त हैं। आपकी कृपा से ज्ञानरूपी नेत्र करके उत्पन्न होनेवाले आनन्द आदि गुण मुझको प्राप्त हों और आप मेरे नेत्र आदि अंगों की सदा रक्षा कीजिये। इस अर्थ से भी परमेश्वर का ग्रहण है तथा भौतिक वायु भी सब पदार्थों में वस रहा है और उक्त आनन्ददि गुणों का देनेवाला तथा अपने शुद्धपन से जीवों के अंग अंग की रक्षा करनेवाला है, इस अर्थ से भौतिक वायु का ग्रहण है ॥

भाष्यम्—वायुर्वा अग्निः सुषमिद्वायुर्हि स्वयमात्मानं समिन्धे स्वयमिदं सर्वं यदिदं किं च वायुमेव तदन्तरिक्षलोक आयातयति। वायुर्वैप्रणीर्यज्ञानाम्। वायुर्वैतूर्णिहव्यवाड्वायुर्हीदं सर्वं सद्यस्तरति यदिदं किं च वायुर्देवेभ्यो हव्यं वहति वायुमेव तदन्तरिक्षलोक आयातयति। आ देवो देवान् वक्षदिति ॥ ऐत० पं०२। कं० ३४ ॥

(वायुर्वा अग्नि०) वायुरग्नि संज्ञोस्ति वा इति निश्चयेन। अतएव सुषमिदग्नेरिन्धनवत् प्रदीपनकर्तास्ति। तथा स्वयमेव वायुर्दीप्तो भवति प्राणायामेन तेन वायुनाऽऽत्मानमहं समिन्धे प्रकाशवन्तं कुर्वे चेतियोगीच्छेदित्यर्थेन भौतिकस्य वायोर्ग्रहणम्। तथा स्वयमिदमित्यादिना परमेश्वरस्य च तद्यथा। य ईश्वरः स इदं सर्वं जगद्यदिदं वर्त्तते तत्सर्वं स्वयमेव समिन्धे सम्यक्प्रकाशयतीति। किं च वायुमप्येवचतदिदं परमेश्वरस्यैव कर्मास्तीत्यतः। तथा (अन्तरिक्षलोक आयतयति०) अनेन भौतिकस्य तद्यथा। सर्वान् त्रसरेण्वादीन्पदार्थान्सूक्ष्मान्तथा स्थूलाँश्चास्मिन्नन्तरिक्षलोके वायुरेवायातयति प्रचालयति धारयति चातः। तथैत्पदार्थयुक्तं भौतिकं वायुमन्तरिक्षे वायुरीश्वर एवायातयति चातः परमेश्वरस्य। तथा (वायुर्वै प्रणी०) अनेनाप्युभयोः। कुतः। यज्ञानामग्निहोत्राद्यश्वमेधान्तानामुपासना योगविज्ञानभूतानां च वेदोपदेशद्वारा प्रणीः प्रकृष्टतया प्रापको वायुः परमेश्वरोस्तीत्यर्थादीश्वरस्य। एवं यज्ञानां चेष्टया सिद्धानां प्रणीर्वायुरेवास्त्यतो भौतिकस्य च। एवं (वायुर्वै तूर्णिः) इत्यनेनैतयोर्द्वयोरपि ग्रहणं भवति। तद्यथा—वायुः परमेश्वर एव तूर्णिरस्ति। कुतः सत्यकारिणां स्वभक्तानां शीघ्रमनुगृहीतास्त्यतः। एवमेव (हव्यवाट्) हव्यं दातुं ग्रहीतुं योग्यं सुखं वहति प्रापयति स हव्यवाडीश्वरः। अयमेवेश्वरः सर्वं जगद्यदिदं किंचिद्वर्त्तते तत्सद्यस्तरति। प्रलयसमये शीघ्रं प्रप्लाव्य विनाशयति। तथोत्पत्तिसमये संतार्य्य प्रसिद्धीकरोति। स एव देवेभ्यो विद्वद्भ्यो वस्वादिभ्यश्च पूर्वोक्तं हव्यं वहति प्रापयति। अन्तरिक्षलोके वायुं चायातयति (आ देवो देवान्) स

एवासमन्तात्प्रकाशकः सन्कृपया विदुषः सर्वं सुखं वक्षत् वहतु प्रापयतु। इत्यर्थेन परमेश्वरस्य ग्रहणम्। तथैव शीघ्रगमनहेतुत्वाद्वायुरेव तूर्णिः। दानग्रहणयोः क्रियायाः प्रापकत्वाद्धव्यवाट् स्ववेगेन यदिदं सर्वं जगद्वर्त्तते तत्सर्वं वायुरेव सद्यस्तरति। देवेभ्यः शिल्पविद्याविद्भ्यो हव्यं शिल्पविद्यासाध्यं व्यवहारं यो वहति प्रापयतीत्यर्थेन भौतिकस्य ग्रहणमिति ॥

भाषार्थ—(वायुर्वा अग्निः) अर्थात् वायु का नाम अग्नि भी है इसी से वह सूखे ईंधन के तुल्य अग्नि को चितानेवाला तथा आप बढ़नेवाला है। योगीजन उसी से प्राणायाम करके अपने आत्मा के प्रकाश करने की इच्छा करते हैं, इस अर्थ से यहाँ भौतिक वायु का तथा वह अपने आप सब जगत् का प्रकाश करनेवाला है, इस अभिप्राय से परमेश्वर का ग्रहण समझना चाहिये। (अन्तरिक्षलोक आयातयति०) अन्तरिक्ष लोक में भौतिकवायु त्रसरेणु आदि सूक्ष्म तथा स्थूल पदार्थों को धारण और उनको अपने अपने कामों में पहुँचानेवाला है। तथा उसी अन्तरिक्ष में उक्त पदार्थों से युक्त भौतिक वायु का परमेश्वर धारण करनेवाला है। इन अर्थों से यहां परमेश्वर और भौतिक वायु ये दोनों लिये जाते हैं तथा (वायुर्वैप्रणी०) इस प्रमाण से भी उक्त दोनों अर्थ स्पष्ट हैं। क्योंकि जैसे वेदों के उपदेश करके अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध पर्य्यन्त यज्ञ, उपासना, योग और विज्ञान आदि का प्रकाश करनेवाला 'वायुः' अर्थात् परमेश्वर है वैसे ही उन यज्ञ आदि कर्मों की जो चेष्टा क्रिया है वह भी प्राण वायु के द्वारा होती है (वायुर्वै तूर्णिः) यह परमेश्वर अपने सत्य-ग्रहण करनेवाले भक्तों पर शीघ्र कृपा करनेवाला तथा भौतिक वायु देश-देशान्तर में शीघ्रगमन वा आगमन करनेवाला है और (हव्यवाट्) जैसे ईश्वर उत्तम सुख का देनेवाला और वही आदि सृष्टि में उत्पत्ति तथा प्रलय के समय में इस संसार का शीघ्र विनाश करनेवाला है वैसे ही भौतिक वायु भी शीघ्र गमन करनेवाला और पदार्थों को देशदेशान्तर में पहुंचानेवाला है। वही ईश्वर वसु आदि जीवों को उत्तम सुख श्रेष्ठ ज्ञानदायक और (आ देवो देवान्०) विद्वानों के आत्माओं का प्रकाश करनेवाला तथा भौतिक वायु देश-देशान्तर के जाने-आने में शीघ्रगामी, देने-लेने की क्रिया का साधन, संसार के पदार्थों को शीघ्र प्राप्त होने योग्य, इस संसार को प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान इन भेदों से पार होनेवाला है तथा शिल्पशास्त्र के जाननेवाले विद्वानों को (हव्य) अर्थात् उस विद्या के कामों का करानेवाला है।

भाष्यम्—वायुर्वै जातवेदा वायुर्हीदं सर्वं करोति यदिदं किं च ॥ ऐत० पं० २। कं० ३४ ॥

प्राणो वै जातवेदाः स हि जातानां वेद यावतां वै सजातानां वेद ते भवन्ति येषामु न वेद किमु ते स्युर्यो वा आज्य आत्मसंस्कृतिं वेद तत्सुविदितम्। ऐ० पं० २। कं० ३९। (वायुर्वैजा०) इत्यनेन द्वयोर्ग्रहणं तद्यथा वायुरीश्वरो जातवेदा अस्ति जातेषूत्पन्नेषु सर्वेषु पदार्थेषु स्वव्याप्त्या विद्यते जातान्सर्वान् वेत्ति विन्दति वा जाता वेदा यस्मात्स जातवेदा इत्यर्थेन परमेश्वरस्य ग्रहणम्। तथैव जातेष्वग्न्यादिषु पदार्थेषु विद्यते जातान् विन्दति लभते स वायुर्भौतिक एवमर्थेन गृह्यते। एवं (वायुर्हीं०) यदिदं किंचिदुत्पन्नं जगद्वर्त्तते तत्सर्वं वायुरीश्वर एव करोतीत्यर्थेनैकस्येश्वरस्य। (प्राणो वै जातवेदाः) इत्यादिनैकस्येश्वरस्यैव ग्रहणं भवति तद्यथा स एव जातानां पदार्थानां वेदा वेत्तास्ति जानाति।

स च यावतो जानतो धार्मिकान्मनुष्यान्वेद तावन्त एव सुखिनो भवन्ति। येषामधर्मात्मनां उ इति वितर्के परमेश्वरो न वेद यान्न जानाति येषामुपरि तस्य कृपादृष्टिर्नभवति किमु ते सुखिनः स्युः किंतु कदाचिन्नेव। यो मनुष्यो ज्ञानेन ज्ञातव्ये आप्ये परमात्मनि योगाभ्यासेन गमनीये वा आत्मसंस्कृतिमात्मनः संस्कारं कर्तुं वेद जानाति। तस्यैव-तत्पूर्वोक्तं सर्वं परात्मज्ञानं सुखं च सुविदितं भवतीत्यर्थादीश्वरस्यैव वायुशब्देन ग्रहणम्॥

वायुः प्राणः प्राणो रेतो रेतः पुरुषस्य प्रथमं संभवतः संभवतीति। ऐ०पं० ३। कं० २॥

इत्यादिना यद्वायुः प्राणाख्यो भुक्तस्य पीतस्य च सारांशं रेतो वीर्य्यमुत्पादयति तदेव पुरुषस्यार्थाद्देहस्य प्रथमावयवं कलीलाख्यं कठिनं भूत्वा संभवत उत्पद्यमानस्य प्रथमं विकरणं संभवति। रेतसः पुरुषो देह उत्पद्यत इति कठोपनिषदानन्दवल्ल्यामुक्त-प्रामाण्यादित्यनेन भौतिको वायुर्गृह्यते॥

भाषार्थ—(वायुर्वै जात०) जिस प्रकार परमेश्वर जातवेदा अर्थात् उत्पन्न किये हुए संसार में व्याप्त होकर दृश्य-अदृश्य सब पदार्थों का जाननेवाला है वैसे ही भौतिक वायु भी उन पदार्थों में सदा विद्यमान अर्थात् भर रहा है (वायुर्हि०) इस जगत् का उत्पादक परमेश्वर है (प्राणो वै०) वही ज्ञानवान् पुरुषों को कृपादृष्टि से देखनेवाला है जिसके अनुग्रह से मनुष्य सुखी होते हैं और जिन अधर्मात्माओं को वह कृपा दृष्टि से नहीं देखता वे किसी प्रकार सुख नहीं पाते, क्योंकि जब तक वे परमेश्वर की कृपा के पात्र नहीं होते तब तक अनेक प्रकार के क्लेशों ही में फसे रहते हैं। जो मनुष्य ज्ञान से जानने योग्य वा योगाभ्यास से प्राप्त होने योग्य परमात्मा में अपने आत्मा का संस्कार—अर्थात् उसके शुद्ध करने का प्रकार जानता हे वह उत्तम सुख बड़े-बड़े दुःखों का विनाशक आत्मा के प्रकाश से ज्ञान को प्राप्त होता है। (वायु आ०) जो प्राण रूप भौतिक वायु है वह खाये-पिये हुए पदार्थों के सार का वीर्य्य उत्पन्न करता है, वही वीर्य्य इस देह का प्रथम अवयव जो कि 'कीलाल' कहाता है (रेतसः०) वीर्य्य से शरीर उत्पन्न होते हैं, यह कठोपनिषद् की आनन्दवल्ली में कहा है॥

भाष्यम्—वायुर्ह्येव प्रजापतिस्तदुक्तमृषिणा पवमानः प्रजापतिरिति। ऐ०पं० ४। कं० २६॥

इत्यनेनोभयोर्ग्रहणम्। कुतः। वायुः परमेश्वर एव हीति प्रसिद्धं पवमानः संज्ञया प्रजायाः पवित्रकारकत्वात्। इदमृषिणा वेदेनोक्तमस्ति। अतः स एव प्रजापतिरित्यर्था-दीश्वरस्य यो वायुः पवमानः पवित्रीकरणे प्रजापालने निमित्तं चास्ति। इदमप्यृषि-शब्दार्थेन ज्ञानस्वरूपेण परमेश्वरेण वेदे चोक्तमस्ति। तस्माद्भौतिको वायुः प्रजापति-शब्दार्थेन गृह्यते॥

प्राणो वै होताङ्गानि होत्रकाः, समानो वा अयं प्राणोऽङ्गान्यनुसंचरति। आत्मा वै होताङ्गानि होत्रकाः समाना वा इमेऽङ्गानाम्। ऐ०पं० ६। कं०८॥

अनेनोभयोः। भौतिकोवायुर्होताऽर्थाद्धारकोस्ति। अङ्गिवत्। यथाङ्गान्यङ्गी धारयति तथा यान्यस्य शरीरस्यावयवा अङ्गानि ब्रह्माण्डस्य पृथिव्यादीनि च होत्रकाख्यानि सन्ति।

एषामयमेव प्राणः सन्नीश्वरो भौतिकश्च धातास्ति। एवमयं सर्वत्र समानः सन्नेतान्यङ्गान्यनु संचरति इत्थमेतान्यप्यस्मिन्नेव प्राणे अनुसंचरन्ति यथायोग्यं गमनागमनं कुर्वन्तीति ग्रहणं भवति।

प्राणांश्चैव तत्स्वर्गांश्च लोकानाप्नुवन्ति प्राणेषु चैव तत्स्वर्गेषु लोकेषु प्रतितिष्ठन्तो यन्ति। ऐ० पं० ७। कं० १॥

अनेन ये मोक्षाख्यं सुखं व्यावहारिकं च प्राप्नुवन्ति ते स्वर्गाख्यान् लोकान्प्राणानेव प्राप्नुवन्ति नातोऽन्ये स्वर्गलोकाः सन्तीति विज्ञायते। कुतः। एतेष्वेव प्रतितिष्ठन्तः सन्तः स्वर्गाख्यं सुखं यन्ति प्राप्नुवन्ति सुखस्यैव स्वर्गसंज्ञत्वात्। तत्तस्मात्प्राणवायोर्विद्या मनुष्यैः सम्यक् सिद्धा कर्त्तव्येति भौतिकस्यैव ग्रहणम्॥

भाषार्थ—(वायुर्हि०) अर्थात् जिस प्रकार से वायु परमेश्वर अपनी प्रजा का (पवमानः) अर्थात् पवित्र करनेवाला है वैसे ही भौतिक वायु भी प्रजा के पवित्र करने में निमित्त होता है इसी से इन दोनों को 'प्रजापति' कहते हैं। अथवा(प्राणो वै०) जैसे यह शरीर अपने अङ्गों को धारण करता है वैसे ही शरीर और ब्रह्माण्ड के पृथिवी आदि अंग जो, कि 'होत्रक' कहाते हैं उनका धारण और उनमें रमण का हेतु भौतिक वायु भी है (प्राणांश्चैव तत्स्वर्गांश्च०) जिनमें विद्वान् लोगों के मोक्ष और व्यावहारिक सुखों को अच्छी प्रकार प्राप्त होते हैं वे प्राण ही स्वर्गलोक कहाते हैं। इससे यह भी जाना जाता है कि उस उक्त आनन्द से भिन्न कोई अन्य स्वर्गलोक नहीं है क्योंकि उन्हीं प्राणों के विलास को जो कि स्वर्गसुख कहाता है वे सज्जन लोग प्रतिष्ठापूर्वक प्राप्त होते हैं, इससे विद्वानों को यह प्राणविद्या अवश्य सिद्ध करनी चाहिये। इन प्रमाणों से यथायोग्य प्रसंगानुसार परमेश्वर और भौतिक वायु इन दोनों ही का ग्रहण करना चाहिये॥

भाष्यम्—अत्रोभयार्थग्रहणे शतपथब्राह्मणस्यापि प्रमाणानि सन्ति। तद्यथा—वायुरसि तिग्मतेजा इति। एतद्वै तेजिष्ठं तेजो यदयं योयं पवत एष हीमाँल्लोकाँस्तिर्य्यङ्ङनुपवते। श०कां०१। अ०२। वा०ब्रा० २। कं० ७॥

हे भगवन्! तिग्मं निशितं तीव्रं शुद्धं तेजः प्रकाशो विज्ञानं यस्य स तिग्मतेजा एवं भूतो वायुसंज्ञस्त्वमसि। एतद्यत्तव तेजोस्ति। तत्तेजिष्ठमतिशयेन प्रकाशस्वरूपम्। यद्यस्माद्योयं भवानन्तर्यामिरूपेणपवते स एष त्वमेवेमान् लोकान्धारयसीत्यर्थाद्वायुशब्दादीश्वरस्य ग्रहणम्। तथा य एवैषेमान् लोकान् तिर्य्यक् पार्श्वतो धृत्वाऽनुपवते चलन्ति लोकास्तानुवायुरपि तैः सह चलतीत्यर्थतो वायुशब्देन भौतिकोऽर्थो गृह्यते॥

प्राणो वै सखा भक्षः। श० कां० १। अ० ८। ब्रा० ३। कं० २३॥

प्राणो वै वाचस्पतिः प्राण एष ग्रहः। श०कां० ४। अ० १। ब्रा०१। कं०६॥

(प्राणो वै स०) प्राणः परमेश्वरः सर्वस्य सखा मित्र एवास्ति। तथा भक्षश्च 'भज सेवायाम्' इति धातोरुणादौ से प्रत्यये कृते भक्ष शब्दस्य सिद्धिः। सर्वेषां सेवनीयो भजनीयः स एवास्तीत्यर्थेन परमेश्वरस्यैव ग्रहणं क्रियते। (प्राणो वै वाच०) प्राणो वायुसंज्ञ ईश्वरो वाचो वाङ्मयस्य देवस्य पतिरस्ति। एष एव प्राण ईश्वरो ग्रहः सर्वस्य

ग्रहीतास्तीत्यनेन ब्रह्मणः। तथा वाचो वागिन्द्रियस्य पतिः पालकः प्राणो वायुरेवास्ति। गृह्णाति येन स ग्रह इत्यनेनार्थेन भौतिकस्य च ग्रहणम्।

प्राणाः शिक्यं प्राणेह्यमात्माशक्नोति स्थातुं यच्छक्नोति तस्माच्छिक्यम्। प्राणैरेवैनमेतद्बिभर्ति। श० कां० ६। अ० ७। ब्रा० १। कं० २०॥

यैरयमात्मा जीवो देहश्च स्थातुं शक्नोति एतच्छरीरं बिभर्त्ति धारयितुं शक्नोति तस्मात्प्राणाः शिक्यसंज्ञकाः सन्ति। एनं प्राणमाश्रित्यैव जीवस्य व्यवहारः सिध्यति। तेन विना जीवो व्यवहारं कर्त्तुं नैव शक्नोतीत्यर्थाद्भौतिको वायुर्गृह्यते।

प्राणो वै विश्वज्ज्योतिः। प्राणा वै वामं यद्धिंकि च प्राणीयं तत्सर्वं बिभर्त्ति तेनेयं वामभृद्वाग्घ त्वेव वामभृत्प्राणा वै वामं वाचि वै प्राणेभ्योऽन्नं धीयते तस्माद्वाग्वामभृत्। श० कां० ७। अ० ४। ब्रा० २। कं० २८। ३५॥

विश्वानि सूर्य्यादीनि ज्योतींषि यस्मिन् तथैव विश्वस्य सर्वस्य संसारस्य ज्योतिः प्रकाशकं यद् ब्रह्मास्ति तत्प्राणशब्देन गृह्यते।

असौ प्राणस्य प्राण इति केनोपनिषदि। (प्राणो वै वामं०) अनेन भौतिकस्य। यत् किंचित्प्राणीयं प्राणेषु भवं प्राणेभ्यो हितं वा जगदस्ति तत्सर्वमयमेव वायुर्बिभर्ति धारयति। येन सहेयं वाक् प्रवर्त्तते तस्मात्प्राणो वामभृदुच्यते। यस्मिन् जीवैरन्नं धीयते येन श्रवणोच्चारणं च क्रियते। वाम शब्देनान्नमप्युच्यते। यस्मादयं वाचं वाम-मन्नं च दधाति तस्माद्वाग्वामभृत्प्राण इत्यस्य ग्रहणम्॥

भाषार्थ—तथा इन्हीं के ग्रहण में अब शतपथ ब्राह्मण के भी प्रमाण दिखलाते हैं जैसे (वायुरसि०) हे वायु परमेश्वर आपका 'तेजः' अर्थात् विज्ञान तीव्र और निरन्तर प्रकाशमान है, आप अन्तर्य्यामिरूप से इन लोकों को शुद्ध तथा धारण करनेवाले हैं। इस भ्रमण-चक्र में एक दूसरे के पास स्थापित किये हुए जो असंख्यात लोक घूम रहे हैं उनके साथ साथ भौतिक वायु भी विचरता रहता है (प्राणो वै सखा०) परमेश्वर सबका मित्र तथा 'भक्ष' अर्थात् सेवा करने के योग्य है। (भज सेवायाम्) इस धातु के आगे उणादिगण का कहा हुआ (से) प्रत्यय लाने से **भक्ष** शब्द सिद्ध होता है और भी देखो कि (प्राणो वै वाल०) जिस प्रकार अर्थात् वायु संज्ञक ईश्वरवाणीरूप वेद का पति तथा सबका ग्रहण करनेवाला है। वैसे ही भौतिक वायु वाक्-इन्द्रिय का पति अर्थात् उसका रक्षक और सब पदार्थों का ग्रहण करनेवाला है। (प्राणाः शिक्यं०) जिस भौतिक वायु के आधार से यह जीव और देह स्थित हो रहे हैं उसी के अवलंब से जीव अपना शरीर धारण करने को समर्थ है, इसी हेतु से प्राणों को **शिक्य** भी कहते हैं, क्योंकि जीव का सब व्यवहार प्राणवायु के ही आश्रय से सिद्ध होता है। (प्राणो वै०) जिसमें सूर्य्य आदि प्रकाशमान लोक ठहर रहे हैं तथा जो संसार का प्रकाश करनेवाला है इससे परमेश्वर को प्राण भी कहते हैं। इसमें केनोपनिषद् का यह प्रमाण है।

(असौ प्राणस्य प्राणः) अर्थात् वह ईश्वर प्राण का भी प्राण है।

(प्राणा वै वामं०) प्राणों के निमित्त से उत्पन्न और प्राणों को हित देनेवाला जो

जगत् है उस सबको भौतिक वायु धारण कर रहा है उसी प्राणवायु के साथ अन्न और वाणी को धारण करता है इससे प्राण 'वामभृत' कहाता है ।।

भाष्यम्—प्राणो वै कूर्म्मः प्राणो हीमाः सर्वाः प्रजाः करोति प्राणमेवैतदुपदधाति । प्राणो वै वाचो वृषा प्राणो मिथुनम् ।। एतत्सर्वं वित्त्वेत्येतद्यत्प्राणान्प्राणयत्पुरीत्यात्मा वै पूर्यद्ध प्राणान्प्राणयत्तस्मात्प्राणा देवाः । श० कां० ७ । अ० ५ । ब्रा० १ । कं० ७ । २१ ।।

अनेनोभयार्थस्य तद्यथा । ईश्वरः कस्मात्कूर्म उच्यते यत इदं सकलं जगत् करोति । भौतिकं वायुं प्रजाया मध्ये जगद्धारणजीवनार्थं धारयति तस्मादीश्वरस्य कूर्म्मनामास्ति । कूर्मस्य प्राणेति वाम प्राणश्चेत्यर्थेनैश्वरो गृह्यते । तथा यो वागिन्द्रियस्य वृषा शब्दानां वृष्टिकर्त्तास्ति । अत एव स मिथुनमुच्यते । वाक् प्राणयोः संयोजनप्रसिद्धेरित्यर्थेन भौतिकस्य च ग्रहणम् । स एतत्सर्वं जगदित्वाऽभिव्याप्य वर्त्तत इतीश्वरस्य । तथा वायवः पुरं ब्रह्माण्डाख्यं शरीरं चेत्वा प्राप्याभिव्याप्य वर्त्तन्ते हीति भौतिकस्य । एवमेवात्मेश्वरस्तां पुरं प्राणाँश्च पूरयन्नभिव्याप्य तान्प्राणयत्प्रचालयन् सन् वर्त्तत एवमीश्वरस्य ग्रहणम् । तथा यतः सूर्य्यादीन् दिव्यान् लोकान्प्रकाशयन्ति तस्मादेते देवाः सन्तीति भौतिकस्य ग्रहणम् ।।

प्राणो वा अर्णवः प्राणे ताᳬसादयति । श० कां० ७ । अ० ५ । ब्रा० २ । कं० ५१ ।।

प्राणा वै वालखिल्याः प्राणानेवैतदुपदधाति । ता यद्वालखिल्या नाम यद्वा उर्वरयोरसंभिन्नं भवति । खिल इति वै तदाचक्षते वालमात्राद्धेमे प्राणा असंभिन्नास्ते यद्वालमात्रादसंभिन्नास्तस्माद्वालखिल्याः । श० कां० ८ । अ० ३ । ब्रा० ४ । कं० १ ।।

य एतस्मिन्प्राणे तां विद्युतं स्थापितवानस्तीदितीश्वरस्य । तथा सभौतिको वायुस्तस्मिन् विद्युतं गमयतीति भौतिकस्य । ईश्वर एतत्सर्वमणुद्व्यणुक त्रसरेण्वाख्यं सर्वं प्राणे खलूपदधाति । तथा यद्यस्माद्वालमात्रेषु खिलान्पदार्थखण्डानीश्वर उपदधाति तस्मात्प्राणा वालखिल्या इति परमेश्वरस्य ग्रहणम् । तथैव यद्यतोऽग्निना भिन्नं कृतं रसं बलेन हरन्ति तस्मादुर्वरयो रसस्यभेत्तारोऽग्नियुक्ताः प्राणाः सन्ति । यो रसो भिन्नः खण्डशो भवति स 'खिल' इत्या चक्षते । तस्माद्वालमात्रात्खण्डखण्डाद्रसादिमं भिन्ना विदीर्णा वर्त्तन्ते । परन्तु ते असंभिन्ना अपि । कुतः । तेषां तैर्बालमात्रैः खण्डैः सहैव वर्त्तमानत्वात् । तस्मात्ते प्राणा बालखिल्या इत्युच्यन्ते । एवं भौतिकस्य । अतो या श्रीमद्भागवतादिषु ग्रन्थेषु बालखिल्यकथा वोक्ताः सन्ति ता अन्यथैव सन्तीति वेद्यम् ।

भाषार्थ—(प्राणो वै कूर्म्म०) फिर वायु परमेश्वर कूर्म्म अर्थात् करनेवाला कहाता है क्योंकि वह जगत् के उत्पादन और जीवन के लिए प्रजा में भौतिक वायु को स्थापन करता है । इसी से कूर्म्म परमेश्वर को प्राण भी कहते हैं । (प्राणो वै वाचः०) जो भौतिक वायु वागिन्द्रिय से (वृषा) अर्थात् शब्दों की वर्षा करानेवाला है वह वाक् और प्राण के संयोग से मिथुन कहाता है (एतत्सर्वं०) जैसे ईश्वर इस जगत् में व्याप्त है वैसे ही भौतिक वायु प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान-भेद से ब्रह्माण्डरूप और शरीरों में परिपूर्ण भर रहा है । जैसे परमेश्वर अपनी व्यापकता से शरीर और प्राणों को उत्तम गुणों से परिपूर्ण करके उन्हें उत्तम उत्तम कार्य्यों में चलाता है वैसे ही

भौतिक वायु भी अपने वेग से सूर्य्य आदि लोकों को उन उन के भ्रमणचक्र में चलाकर प्रकाश करता है और इसी से वे प्रकाशयुक्त होने से देव भी कहाते हैं। (प्राणो वा अर्णवः०) जिस प्रकार ईश्वर इस प्राण में (विद्युतं) अर्थात् प्रकाश को स्थापन करता है इसी प्रकार रस के परमाणु अर्थात् खंड ऐसे सूक्ष्मरूप हो जाते हैं कि दृष्टि में आना असंभव है और बालमात्र अर्थात् जो वे चक्षु इन्द्रिय से दीख पड़ता है परन्तु क्योंकि इस स्थान में दूसरा स्थूल द्रव्य बालखिल से न्यून उपमा योग्य नहीं जाना गया है इसलिये बालमात्र खंड उपमा देना अवश्य समझा गया है। भौतिक वायु भी मेघादिकों में विद्युत् अर्थात् बिजली को प्रकाश करता है, फिर (प्राणा वै बालखिल्याः०) ईश्वर अणु द्व्यणुक और त्रसरेणु आदि संयोगी दृश्य-अदृश्य चेतन देहधारी कीट, पतंगादि जगत् के जीवों को प्राणों से संयुक्त करता है इसीसे प्राण 'बालखिल्य' भी कहाते हैं। जो औषधि आदि पदार्थों का रस अग्नि से परमाणु रूप हो जाता है उसको प्राणरूप पवन हरण करके अपनी तीव्र अग्नि के वेग से भेद करके धीरे धीरे खेंच लेते हैं, इसलिये उस परमाणुरूप रस को खिल कहते हैं और खिल अर्थात् बालमात्र खंडरूप रस के परमाणु यहीं तक सूक्ष्म होते हैं कि जो कदाचित् प्राण-विदीर्ण अर्थात् चीरना भी चाहें तो कभी नहीं कर सकते हैं क्योंकि उनके साथ ही रहा करते हैं। इससे प्राण भौतिक वायु भी 'बालखिल्य' कहाते हैं, इससे निश्चय होता है कि भागवत आदि ग्रंथों में बालखिल्य किसी ऋषि का नाम मान कर जो कथा लिखी है वे सब झूँठी हैं॥

भाष्यम्—वायुर्वा आशुस्त्रिवित्स एषु त्रिषु लोकेषु वर्त्तते तद्यत्तमाहाशुरित्येष हि सर्वेषां भूतानामाशिष्ठः। श० कां० ८ अ० ४। ब्रा० १। कं० ६॥

वायुर्वाव धर्त्रं चतुष्टोमः स आभिश्चतसृभिर्दिग्भिः स्तुते तद्यत्तमाह धर्त्रमिति। वायुरु सर्वेषां भूतानां प्रतिष्ठा तदेव तद्रूपमुपदधाति स वै वायुमेव प्रथममुपदधाति। वायुमुत्तमं वायुनैव तदेतानि सर्वाणि भूतान्युभयतः परिगृह्णाति। श० कां० ८। अ० ४। ब्रा० ४। कं० २६॥

यतोऽयं वायुः शीघ्रं गाम्येव वर्त्तते। तस्मादाशुरस्ति। तथा त्रिवृच्च सः एषु त्रिषु लोकेष्वाशुगत्या वर्त्तते तस्मात्तमाहाशुः। एष हि सर्वेषां भूतानां मध्ये (आशिष्ठः) अतिशयेनाशुगमनशीलः इत्यर्थेन भौतिको वायुर्गृह्यते। वायुरीश्वरः सर्वेषां लोकानां धर्त्रमर्थाद्धारकोस्तीति। अत एव सर्वेषां भूतानां प्रतिष्ठाऽधिकरणम्। स एव सर्वलोक-धारणार्थं प्रथमं भौतिकं वायुमुप समीपे स्थापयति। येनैवेश्वरः सर्वाणि भूतान्युभयतो बाह्याभ्यन्तराभ्यां परिगृह्णाति वायुं चापि। एवमीश्वरस्य। तथा भौतिकोपि वायु-श्चतसृभिर्दिग्भिस्त्रसरेण्वादीनां धारणाद्धर्त्रमस्ति प्रतिष्ठा च। येन जीव उभयतो बाह्याभ्यन्तराभ्यां कथनश्रवणादीनि कर्माणि परिगृह्णातीति भौतिकस्य॥

वायुर्वै गौतम तत्सूत्रम्। वायुना वै गौतमसूत्रेणायं च लोकः परश्च लोकः सर्वाणि च भूतानि संदृब्धानि भवन्ति तस्माद्ध गौतम पुरुषं प्रेतमाहुर्व्यस्रꣳसिषतास्याङ्गानीति वायुना हि गौतम सूत्रेण संदृब्धानि भवन्ति। श० कां० १४। अ० ६। ब्रा० ७। कं० ६॥

हे गौतम एतेन सूत्रात्मरूपेण व्याप्तेनेश्वरेणायं च लोक इत्यादीनि सर्वाणि

वस्तूनि संदृब्धानि धारितानि भवन्तीति विजानीहि । एवमेव भौतिकेन वायुनापि सर्वेषां लोकानां बाह्यं धारणं भवन्तीत्युभयार्थस्य ।

तस्य प्राणा एवामृता आसुः शरीरं मर्त्यम् । श० कां० १० । अ० १ । ब्रा० ४ । कं० १ ॥

यजमानस्य जीवस्य शरीरे प्राणा अमृता मरणरहिताः सन्ति । शरीरं च मरणधर्मीति भूताख्य वायोः ।

प्राणो वाव सोग्निर्यदा वै पुरुषः स्वपिति प्राणं तर्हि वागप्येति प्राणं चक्षुः प्राणं मनः प्राणँ श्रोत्रं यदा प्रबुध्यते प्राणादेवाधि पुनर्जायन्त इत्याध्यात्मम् । श० कां० १० । अ० ३ । ब्रा० ३ । कं० ६ ॥

प्राणो वै वायुरग्निसंज्ञोस्ति । यदा पुरुषो जीवः शयनं करोति तदा वाक् चक्षुः मनः श्रोत्रादयश्च प्राणं प्राप्य निश्चेष्टा भवन्ति । यदा जागर्त्ति तदा प्राणादेवाधि पुनः प्रसिद्धा भवन्तीति भौतिकस्य ।

प्राणेन वा अग्निर्दीप्यते । अग्निना वायुर्वायुनादित्य आदित्येन चन्द्रमाश्चन्द्रमसा नक्षत्राणि नक्षत्रैर्विद्युदेतावती वै दीप्तिरस्मिंश्च लोकेऽमुष्मिँश्च सर्वाᳩहैतां दीप्ति दीप्यतेऽस्मिँश्च लोकेऽमुष्मिँश्च य एवं वेद । श० कां० १० । अ० ६ । ब्रा० ५ । कं० ११ ॥

प्राणेन भौतिकेन वायुनाऽग्निर्दीप्यते अग्निना वायुर्वायुनादित्यः सवितादित्येन सूर्य्येण चन्द्रमाश्चन्द्रमसा नक्षत्राणि नक्षत्रलोकैर्वर्षाभिश्च विद्युद्दीप्यते । एतावत्येव दीप्तिरस्मिन् परस्मिंश्च लोकेऽस्तीति विजानीयादिति भौतिकवायोर्ग्रहणम् ।

प्राणा वै दशवीराः प्राणानेवात्मन्धत्ते सर्वगणमित्यङ्गानि वै सर्वे गणा अङ्गान्येवात्मन्धत्ते । श०कां०१२ । अ० ८ । ब्रा० १ । कं० २२ ।

वीराख्या अग्निनः शिर आदीनि शरीराङ्गानि पृथिव्यादीनि ब्रह्माण्डस्य च । एत एव वीर पुरुषवत् सर्वं धारयन्तीति भौतिकस्य ग्रहणम् ।

प्राणन्नेव प्राणो नाम भवति । वदन् वाक्पश्यँश्चक्षुः शृण्वञ्छ्रोत्रं मन्वानो मनस्तान्यस्यैतानि कर्मनामान्येव स यो त एकैकमुपास्ते न स वेदाकृत्स्नो ह्येषोत एकैकेन भवति । श० कां०१४ । अ० ४ । ब्रा० २ । कं० १७ ॥

अनेनात्र प्राणशब्देन जीवेश्वरयोर्ग्रहणं न भौतिकस्य । कुतस्तस्य जडत्वात् । जीवस्तु प्राणादिसाधनेनैव प्राणँस्तत्तन्नामा भवति न चैवमीश्वरः स तु स्वशक्त्यावेतानि कर्माणि कुर्वंस्तत्तन्नामा भवति । अत्र विषये बहून्यन्यान्यपि प्रमाणानि सन्ति ग्रन्थभूयस्त्वभयान्नात्र लिख्यन्ते । यस्याधिकदर्शनेच्छा भवेत्स व्याकरणनिरुक्त-ब्राह्मणादिसत्यग्रन्थेष्वधिकं वेदार्थं विजानीत् । यो वायुशब्दार्थः स सायणोवट-महीधराध्यापक विलसन मोक्षमूलरादिभिर्न सम्यग्विदितः वेदानां सत्यव्याख्यानविज्ञान-विरहत्वात् ॥

भाषार्थ—(वायुर्वा आशु०) यह भौतिक वायु अपनी शीघ्र गति से तीनों लोक में धावन करके वर्त्तमान रहता है, इससे इसको 'आशु' कहते हैं । क्योंकि यह सब प्राणियों में परिपूर्ण भर रहा है तथा

कहीं ऐसा भी कहा है कि (तस्य प्राणा०) अर्थात् यह भौतिक वायु प्राणियों के शरीर में अमर और शरीर मरणवश होता है। (प्राणो वा वसोग्निः०) प्राणवायु अग्नि भी कहाता है क्योंकि जिस समय जीव सोता है तब वाणी, नेत्र, मन और कर्ण आदि इन्द्रियां उस प्राण का अवलम्ब लेकर चेष्टारहित अर्थात् शून्य हो जाती हैं, इसके उपरान्त जब वह सो कर जागता है तब उसी प्राण की प्रेरणा से अपने अपने कामों में फिर चेतन हो जाती हैं।

और भी देखो (प्राणेन वा०) भौतिक वायु प्राणियों की अग्नि को, अग्नि उस भौतिक वायु को, वायु सूर्य्य को, सूर्य चन्द्रमा को, चन्द्रमा तारों को तथा तारे और वर्षा बिजली को प्रकाश करते हैं। यही (दीप्ति) अर्थात् प्रकाश इस लोक और परलोक में वर्त्तमान है। तथा (प्राणाः०) प्राण वायु वीर पुरुषों के समान अपने शिर आदि तथा ब्रह्माण्ड अपने पृथिवी आदि अंगों को धारण करते हैं इसलिये उनको 'वीर' भी कहते हैं।

(प्राणान्नेव०) यहाँ प्राण शब्द से जीव और ईश्वर का ग्रहण है, भौतिक वायु का नहीं, क्योंकि वह जड़ है। और जीव जो कि प्राण, अपान आदि साधनों से शरीर के व्यवहारों को करता हुआ प्राण आदि संज्ञाओं को प्राप्त होता है।

इस विषय में बहुत से प्रमाण पाये जाते हैं परन्तु ग्रन्थ के बढ़ जाने के भय से सब यहाँ नहीं लिखते। जिनकी इच्छा हो वे उनको व्याकरण, निरुक्त और ब्राह्मणादि सत्य ग्रन्थों में देख लें। वायु शब्द वेदों में जिस जिस अर्थ का वाची होकर जहाँ जिस प्रकार से ग्रहण किया गया है उनको सायण, उवट, महीधर आदि भाष्यकारों तथा प्रोफेसर मोक्षमूलर और विलसन साहब आदि यूरोपियन् पुरुषों ने नहीं जानकर अन्यथा व्याख्यान किया है। क्योंकि उनके हाथ सत्य व्याख्यान नहीं लगे अथवा जो मिले भी हों तो उनका यथार्थ ज्ञान और ठीक ठीक अर्थ विचार न सके॥

अथात्रोभयार्थे वेदमन्त्रा अपि प्रमाणानि सन्ति। तेषां मध्यात् सार्थद्वौ द्वावत्रोदाहृयेते। तत्र परमेश्वरार्थे प्रमाणमाह—

उत वात पितासि न उत भ्रातोत नः सखा।
स नो जीवातवे कृधि॥ १॥
यददो वात ते गृहेऽमृतस्य निधिर्हितः।
ततो नो देहि जीवसे॥ २॥

ऋ० मं० १०। सू० १८६। मं० २। ३॥ अनयोरभिप्रायः—

हे (वात) जगदीश्वर! (नः) अस्माकं त्वमेव पिता भ्राता उत सखासि अतो भवानेव (नः) अस्माकं (उत) इति शरीरात्मनोरत्यन्त पालको धारकः सुखदाताचास्ति त्वं (नः) अस्मान् सुखेन जीवनाय समर्थान् (कृधि) कृपया कुरु॥ १॥ हे (वात) सर्वधारक! (यददः) यद् मोक्षसुखमस्ति तत् (ते गृहे) सच्चिदानन्दस्वरूपस्य तवैव स्थाने व्याप्तौ प्राप्यते (अमृतस्य निधिर्हितः) तत्र भवति परमेश्वरे मोक्षसुखस्य कोशो धृतोस्ति (ततो नो देहि जीवसे) हे भगवन्! त्वं तस्मादमृतकोशात् (नः)

अस्मभ्यं मुमुक्षुभ्यः (जीवसे) आनन्देन जीवितुं तन्मोक्षसुखं करुणया देहि ॥ २ ॥ इत्येताभ्यां परमेश्वरस्य ग्रहणं स्पष्टं गम्यते ॥

अथ भौतिकार्थे वैदिकं प्रमाणमस्ति—

वायुर्युङ्क्ते रोहिता वायुररुणा वायू रथे अजिरा धुरि वोळ्हवे वहिष्ठा धुरि वोळ्हवे ॥ ...ऋ० मं० १ । सू० १३४ । मं० ३ ॥

अस्यार्थः—(वायुः) अयं भौतिको वायुः (रोहिताः) अग्न्यश्वाः (वायुररुणाः) ज्वालया वेगार्थं वाष्परूपाः (वायूरथे अजिराः) यानानि क्षिप्रं गमयितारः (धुरि वोढवे वहिष्ठाः) अग्न्यागारे प्रयुक्ताः यानानां शीघ्रं वहनायातिशयेन वेगकारिणः (धुरि वोढवे) बहुभारयुक्तेपि याने वहनाय समर्थाः शिल्पिभिर्यानेषु कलायन्त्र योजनेन विमानादीना शीघ्रं स्थानान्तरे प्रापयितारस्सन्ति तान् (रथे) विमानाद्याख्ये (युङ्क्ते) । इति मन्त्रार्थे वायुशब्दाद् भौतिकार्थग्रहणे सुष्ठूक्तिरस्ति ॥

अन्वयः—हे वायो परमेश्वर दर्शतः ज्ञानेन विज्ञातुं योग्यस्त्वम् (आयाहि) अस्मदात्मनि प्रकाशितो भव येन भवतैव इमे सोमाः संसारस्थ पदार्थसमूहाः अरंकृताः अलंकृताः शोभिताः तेषां पाहि कृपया त्वमेव तान् पालय तथा हवं वेदेस्थैः संस्तोत्रैरस्मदुच्चारितां स्तुतिं श्रुधि सर्वज्ञतया निशामय ॥

तथा अयं भौतिकः दर्शतः पदार्थविद्या प्राप्तये दर्शनीयगुणो वायुरस्ति येन इमे सोमाः प्रत्यक्षाः सोमवल्ल्याद्या ओषधयस्तद्रसाश्च अरंकृताः शोभिता भवन्ति स एव तेषां पाहि तान् पालयति । श्रुधी हवं येन निमित्तेन सर्वे जीवाः शब्दोच्चारणश्रवणे कुर्व्वन्तीति ॥

भावार्थः—प्रथम सूक्तेग्निशब्देन पदार्थविद्या उक्ताथेश्वरेण द्वितीय सूक्ते तत्सहकारितया वायुविद्योपदेशः क्रियते । तन्निमित्तमाह वायु उक्थेभिरिति ॥

भाषार्थ—अब वायु शब्द से परमेश्वर और भौतिक इन दोनों अर्थों में वेद मंत्रों के प्रमाणों में से दो मंत्र अर्थ सहित ईश्वर विषय में तथा आधा मंत्र भौतिक वायु के विषय में क्रम से दिखलाते हैं ॥

(वात) हे जगदीश्वर ! (नः) हमारे आप ही पिता, भ्राता और मित्र हैं, इसी से आप (नः) हमारे निरन्तर शरीर के पालन और धारण करनेवाले तथा हमारे लिये सब सुखों के देनेवाले हैं, सो आप कृपा करके सुख से जीवन के लिये हम लोगों को समर्थ कीजिये ॥१॥

हे वात ! अर्थात् सर्वधारक परमेश्वर ! (यददः) जो मोक्ष सुख है सो (ते गृहे) सच्चिदानन्दस्वरूप आपकी ही व्याप्ति अर्थात् परिपूर्णतारूप स्थान में प्राप्त हो सकता है क्योंकि (अमृतस्य निधिहितः) उस अकथनीय सुख के कोश आप ही हैं (ततो नो देहि जीवसे) हे भगवन् ! आप उसी कोश में से (नः) मोक्ष की इच्छा करनेवाले हम लोगों के (जीवसे) आनन्द से जीने के लिये उस परम सुख को दीजिये ॥२॥ इन मंत्रों से वायु करके परमेश्वर का ग्रहण स्पष्ट मालूम होता है ॥

अब आगे भौतिक वायु के ग्रहण विषय में देखिये—

(वायुः) यह भौतिक वायु (रोहिताः) जो कि (वायुरुणाः) अग्नि की लपट से उत्पन्न हुए भाप रूप (अजिराः) सवारियों को शीघ्र पहुंचानेवाले (धुरि वोढवे वहिष्ठाः) अग्नि के कोठे में अच्छी प्रकार साधन किये हुए कलायुक्त सवारियों में अग्नि और जल भापरूप घोड़ों के स्थापन करने के लिये पृथक् पृथक् कोठे, विमान, नौका आदि में हुआ करते थे वो कहीं कहीं अब भी देखने में आते हैं। सवारियों को अत्यन्त वेग देनेवाले (धुरि वोढवे) तथा बहुत बोझ से भरी हुई गाड़ियों को भी एक जगह से दूसरी जगह शीघ्र ले जानेवाले (रोहिताः) अग्नि के घोड़े हैं, उनको (रथे) विमान आदि रथों में जोड़ता है और (वायुः) वही उनका पालन करता है। इस मंत्र के अर्थानुसार वायु शब्द से भौतिक वायु का ग्रहण निरन्तर स्पष्ट है॥

भाषार्थ—पहले सूक्त में तो अग्नि शब्द से पदार्थविद्या जताई। अब दूसरे सूक्त में उस विद्या की सहायक अर्थात् संयोगी वायु-विद्या का उपदेश किया जाता है। उस उपदेश का निमित्त (वायु उक्थेभिः) इस मंत्र से कहते हैं॥

——

वैदिक पुस्तकालय, अजमेर

महर्षि दयानन्द सरस्वती के हस्तलेखों से मिलान कर प्रकाशित ग्रन्थों का प्राप्ति-स्थल

विशिष्ट प्रकाशन :

दयानन्द ग्रन्थमाला
[दो खण्ड : फुलक्लाथ, प्लास्टिक कवर]
नवजागरण के पुरोधा : महर्षि दयानन्द
(लेखक डॉ. भवानीलाल भारतीय)
म. दयानन्द निर्वाणशती-स्मृति ग्रन्थ
(सं. स्वामी सत्यप्रकाशजी सरस्वती)
आत्मकथा : दयानन्द सरस्वती
महर्षि दयानन्द के पत्र

वेद संहिताएँ (मूल-संस्कृत में)

ऋग्वेद संहिता
यजुर्वेद संहिता
अथर्ववेद संहिता
सामवेद संहिता

महर्षि दयानन्द कृत ग्रन्थ

ऋग्वेद भाष्य (९ खण्ड)
ऋग्वेद भाषाभाष्य (९ खण्ड)
यजुर्वेद भाष्य (४ खण्ड)
यजुर्वेद भाषाभाष्य (२ खण्ड)
सत्यार्थप्रकाश
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका
वेदांगप्रकाश पूरासैट (१४ भाग)
संस्कारविधि
आर्याभिविनय बड़ा आकार
अनुभ्रमोच्छेदन
भ्रमोच्छेदन
भ्रान्तिनिवारण
सत्यधर्मविचार
काशी शास्त्रार्थ
शास्त्रार्थ फीरोजाबाद
शिक्षापत्रीध्वान्तनिवारण
वेदविरुद्धमतखण्डन
वेदान्तिध्वान्तनिवारण
पंचमहायज्ञविधि
नित्यकर्मविधि

अन्य ग्रन्थ

Life of Swami Dayananda :
Harbilas Sarda
Dayanand Commemoration Volume
महर्षि दयानन्द और स्वामी विवेकानन्द
दयानन्द वचनामृत [संकलन]
महर्षि दयानन्द : जीवन और संदेश
आर्यसमाज की मान्यताएँ : श्री गजानन्द आर्य
परोपकारिणी सभा का इतिहास
आर्यसमाज के शास्त्रार्थ महारथी
महर्षि दयानन्द के भक्त, प्रशंसक और सत्सङ्गी

स्व० स्वामी ब्रह्ममुनिजी कृत

ऋग्वेद भाष्य दशम मण्डल [दो खण्ड]
ऋग्वेद भाषाभाष्य दशम मण्डल [दो खण्ड]

वैदिक पुस्तकालय

दयानन्द आश्रम, केसरगंज, अजमेर